दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

खम्मामि सव्वजीवाणं,
सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु,
वैर मज्झं ण केण वि॥

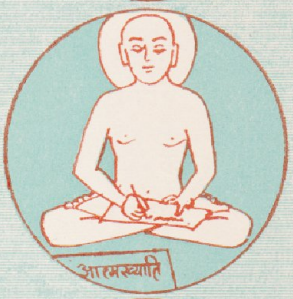

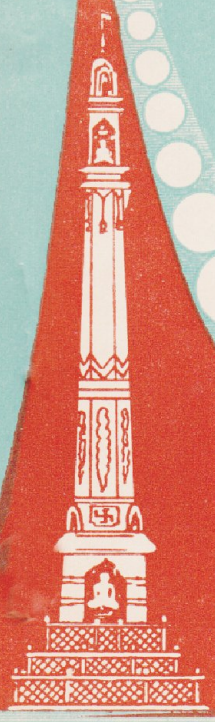

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३२ : अंक ३ [३७५] सितम्बर, १९७६

आत्मधर्म [३७५]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स
जयपुर

क्या

१ सुमर सदा मन आतमराम
२ किसका त्याग ?
३ संपादकीय : उत्तम क्षमा
४ अनेकांतमयी मूर्ति : सरस्वती देवी
५ स्वभाव की लगनी स्वयं ही.....
६ शुद्ध निश्चयनियम किसे होता है ?
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ रुचि और पुरुषार्थ
९ नयों के कथन का मूल प्रयोजन
१० ज्ञान-गोष्ठी
११ समाचार दर्शन
१२ पाठकों के पत्र
१३ प्रबंध संपादक की कलम से

क्षमावाणी के पावन अवसर पर अज्ञान व प्रमादवश हुए ज्ञात व अज्ञात अपराधों के लिये आत्मधर्म परिवार क्षमाप्रार्थी है। - *संपादक*

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७५] अंक : ३

सुमर सदा मन आतमराम ॥सुमर० ॥
स्वजन कुटुंबी जन तू पोखे,
तिनको होय सदैव गुलाम।
सो तो हैं स्वारथ के साथी,
अन्तकाल नहीं आवत काम ॥सुमर० ॥
जिमि मरीचिका में मृग भटके,
परत सो जब ग्रीषम घाम।
जैसे तू भवमाहीं भटके,
धरत न इक छिनहू विसराम ॥सुमर० ॥
करत न ग्लानी अब भोगन में,
धरत न वीतराग परिनाम।
फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी,
जहाँ सुख लेश न आठौं जाम ॥सुमर० ॥
तातैं आकुलता अब तजिके,
थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
'भागचंद' बसि ज्ञान नगर में,
तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥सुमर० ॥

किसका त्याग ?

लोग कहते हैं कि त्याग करो ! त्याग करो ! किंतु त्याग का स्वरूप क्या है ? त्याग कोई वस्तु है, कोई गुण है, या किसी पदार्थ की अवस्था है ? क्योंकि जो शब्द कहा जाता है, वह किसी द्रव्य को, किसी गुण को, अथवा किसी पर्याय को अवलंबन करके होता है। त्याग परवस्तु का त्याग है, अथवा राग-द्वेष का त्याग है, या स्वरूप में एकाग्र रहना, सो त्याग है ?

आत्मा के मूलस्वभाव में तो ग्रहण-त्याग है नहीं। आत्मा ने पर का कुछ ग्रहण किया हो, तब त्यागे न ? इसलिये स्वरूप की पहिचान करके उसमें स्थिर रहना ही त्याग है और वह आत्मा की निर्मल पर्याय है। मकान, कुटुंबी, लक्ष्मी इत्यादि कहीं आत्मा में घुस नहीं गये हैं, तब फिर उनका त्याग कैसे हो ? वे मकान आदि आत्मा में घुस नहीं गये हैं; किंतु आत्मा में घुसे हुए हैं, यह मान रखा है। 'शरीर, मकान, स्त्री, लक्ष्मी इत्यादि मेरे हैं' यह मानना ही अत्याग भाव है।

जो विपरीत मान रखा था, उसमें प्रतीति हुई कि 'यह मैं नहीं हूँ'। मेरे स्वभाव का विस्तार, विकार नहीं हो सकता। मैं एक आत्मा हूँ और जानना-देखना मेरा स्वभाव है। उसमें पर के निमित्त से जो क्रोध, मान, माया और लोभ का विस्तार दिखाई देता है, वह मेरे आत्मा के स्वभाव का विस्तार नहीं है। राग-द्वेष को छोड़ना ही व्यवहार है। आत्मा के अखंड, शुद्ध, निर्मल स्वभाव में जितने अंश स्थिर हुआ जाता है; उतने अंश में राग-द्वेष सहज छूट जाते हैं, उसी को त्याग कहते हैं।

हिन्दुस्तान के लोग त्याग के नाम पर ठगाये गये हैं। बाह्य त्याग को देखकर लोग ठगाये जाते हैं, क्योंकि हिन्दुस्तान में इतनी आर्यता और त्याग का प्रेम है कि यहाँ त्याग के नाम पर लोग सदा ठगाये जाते हैं। अंध श्रद्धा में वे त्याग की सच्ची पहिचान नहीं कर पाते।

— पूज्य स्वामीजी

सम्पादकीय

उत्तम क्षमा

एक अनुशीलन

क्षमा आत्मा का स्वभाव है। क्षमास्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो क्रोध के अभावरूप शांति-स्वरूप पर्याय प्रगट होती है, उसे भी क्षमा कहते हैं। यद्यपि आत्मा क्षमास्वभावी है, तथापि अनादि से आत्मा में क्षमा के अभावरूप क्रोध पर्याय ही प्रकटरूप से विद्यमान है।

जब-जब उत्तम क्षमादि धर्मों की चर्चा चलती है, तब-तब उनका स्वरूप अभावरूप ही बताया जाता है। कहा जाता है - क्रोध का अभाव क्षमा है, मान का अभाव मार्दव है, माया का अभाव आर्जव है - आदि।

क्या धर्म अभावस्वरूप (Negative) है ? क्या उसका कोई भावात्मक (Positive) रूप नहीं है ? यदि है, तो क्यों नहीं उसे भावात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता ?

क्रोध नहीं करना, मान नहीं करना, छल-कपट नहीं करना, हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, आदि न जाने कितने निषेध समा गये हैं धर्म में। धर्म क्या मात्र निषेधों का नाम है ? क्या उसका कोई विधेयात्मक पक्ष नहीं ? यदि धर्म में पर से निवृत्ति की बात है तो साथ में स्व में प्रवृत्ति की भी चर्चा कम नहीं है।

यह नहीं करना, वह नहीं करना, प्रतिबंधों की भाषा है। बंधन से छूटने का अभिलाषी मोक्षार्थी जब धर्म के नाम पर भी बंधनों की लंबी सूची सुनता है तो घबड़ा जाता है। वह सोचता है कि यहाँ आया था बंधन से छूटने का मार्ग खोजने के लिये और यहाँ तो अनेक प्रतिबंधों में बाँधा जा रहा है। धर्म तो स्वतंत्रता का नाम है। जिसमें अनंत बंधन हों, वह धर्म कैसा ?

तो क्या धर्म प्रतिबंधों का नाम है, अभावस्वरूप है ? नहीं, धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते हैं, अतः वह सद्भावस्वरूप ही होता है, अभावस्वरूप नहीं। पर क्या करें, हमारी भाषा

उल्टी हो गयी है। क्रोध का अभाव क्षमा है, मान का अभाव मार्दव है – के स्थान पर हम ऐसा क्यों नहीं कहते कि क्षमा का अभाव क्रोध है, मार्दव का अभाव मान है, आर्जव का अभाव मायाचार है – आदि।

जरा विचारिये – ज्ञान का अभाव अज्ञान है या अज्ञान का अभाव ज्ञान? 'ज्ञान' मूल शब्द है, उसमें निषेधवाचक 'अ' लगाकर 'अज्ञान' शब्द बना है, अत: स्वत: सिद्ध है कि ज्ञान का अभाव अज्ञान है।

वस्तु का स्वभाव तो धर्म होता ही है। साथ ही स्वभाव के अनुरूप पर्याय को अर्थात् स्वभावपर्याय को भी धर्म कहा जाता है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र स्वभावपर्याय होने से ही धर्म है। विभाव (विभाव पर्याय) को अधर्म कहते हैं।

ज्ञान आत्मवस्तु का स्वभाव है, अत: धर्म है। सम्यग्ज्ञानपर्याय को भी ज्ञान कहते हैं, अत: सम्यग्ज्ञान भी धर्म है। अज्ञान (मिथ्याज्ञानपर्याय) आत्मा का विभाव है, अत: वह अधर्म है। इसीप्रकार क्षमा आत्मा का स्वभाव है और क्षमास्वभावी आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली क्षमाभावरूप स्वभावपर्याय भी धर्म है, किंतु क्षमास्वभावी आत्मा जब क्षमास्वभावरूप परिणमन न करके विभावरूप परिणमन करता है, तो उसके उस विभाव परिणमन को क्रोध कहा जाता है।

क्रोध आत्मा का एक विभाव है और वह क्षमा के अभावस्वरूप प्रगट हुआ है। यद्यपि वह संतति की अपेक्षा से अनादि का है, तथापि प्रति समय नया–नया उत्पन्न होता है, अत: सत्य तो यह है कि क्षमा का अभाव क्रोध है, पर कहा यह जाता है कि क्रोध का अभाव क्षमा है। इसका कारण यह है कि अनादि से यह आत्मा कभी भी क्षमादि स्वभावरूप परिणमित नहीं हुआ, क्रोधादि विकाररूप ही परिणमित हुआ है, और जब भी क्षमादि स्वभावरूप परिणमित होता है तो क्रोधादि का अभाव हो जाता है। अत: क्रोधादि का अभावपूर्वक क्षमादिरूप परिणमन देखकर उक्त कथन किया जाता है।

यदि ज्ञान के समान ही इसका प्रयोग अपेक्षित हो तो वह इसप्रकार किया जा सकता है :- ज्ञान का अभाव अज्ञान, क्षमा का अभाव अक्षमा (क्रोध), मार्दव का अभाव अमार्दव (मान), आर्जव का अभाव अनार्जव (मायाचार–छल–कपट) आदि।

जब कोई यह नहीं कहता कि अज्ञान मत करो, पर यही कहा जाता है कि ज्ञान करो; तब क्रोध मत करो के स्थान पर क्षमा धारण करो, क्यों नहीं कहा जाता ? इसका भी कारण है, और वह यह कि हम क्रोध, मान, माया आदि से परिचित हैं; वे हमारे नित्य अनुभूत विभाव हैं। क्षमादि हमारे लिये अपरिचित और अननुभूत से हैं। परिचित से अपरिचित की और अनुभूत से अननुभूत की तरफ जाना ही सहज होता है।

दुनिया की यह स्थिति है कि उसे जब यह कहा जाता है कि क्रोध नही करना, क्षमा है तो उसे संतोष हो जाता है, पर उसे यह कहा जाये कि क्षमा नहीं करना क्रोध है तो अटपटा लगता है, कुछ समझ में नहीं आता। अतः क्रोध की परिभाषा सदा भावात्मक (Positive) समझाई जाती है, जैसे – क्रोध गुस्से को कहते हैं, जब क्रोध आता है तो आँखें लाल हो जाती हैं, शरीर काँपने लगता है, ओंठ फड़कने लगते हैं, आदि।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि आचार्यों ने भी तो इसीप्रकार समझाया है। आचार्यों के सामने भी एक समस्या थी कि उन्हें क्रोधियों को क्षमा समझानी थी, अतः क्षमा को भी क्रोध के माध्यम से समझाना पड़ा। व्यवहारी को व्यवहार की भाषा में समझाना पड़ता है। मुनिजन क्षमा के भंडार होते हैं। यदि वे अपनी ओर से बोलेंगे तो यही बोलेंगे कि क्षमा का अभाव क्रोध है, पर दुनिया में भाव होता है वक्ता का और भाषा होती है श्रोता की। यदि श्रोता की भाषा में न बोला गया तो वह कुछ समझ ही न सकेगा।

अतः ज्ञानीजन समझाना तो चाहते हैं क्षमा धर्म, पर समझाते हैं क्रोध की बात करके। बच्चों से बात करने के लिये उनकी ओर से बोलना पड़ता है। जब हम बच्चे से कहते हैं कि माँ को बुलाना, तब हमारा आशय बच्चों की माँ से होता है, अपनी माँ से नहीं; क्योंकि हम जानते हैं कि ऐसा कहने पर बच्चा अपनी माँ को ही बुलायेगा, हमारी माँ को नहीं। इसीप्रकार जब हमें क्षमा को क्रोध की भाषा में ही समझाना है तो पहिले क्रोध को अच्छी तरह स्पष्ट करना होगा।

यद्यपि यह आत्मा ज्ञान का घनपिंड और आनंद का कंद है, स्वभाव से स्वयं परिपूर्ण है; तथापि कुछ विकृतियाँ, कमजोरियाँ तब से ही इसके साथ जुड़ी हुई हैं, जब से यह है। उन कमजोरियों को शास्त्रकारों ने विभाव कहा है। कषाय और न जाने क्या-क्या नाम दिये। उनके त्याग का उपदेश भी कम नहीं दिया। सच्चे सुख को प्राप्त करने का उपाय भी उनके त्याग को ही बताया है।

महात्माओं के अनेक उपदेशों और आदेशों के बावजूद भी प्राणी इनसे बच नहीं पाया। इन कमजोरियों के कारण प्राणियों ने अनेक कष्ट उठाये हैं, उठा रहे हैं और उठायेंगे। इनसे बचने के लिये भी उपाय कम नहीं किये, पर बात वहीं की वहीं रही।

जिन विकारों के कारण, जिन कमजोरियों के कारण, जिन कषायों के कारण प्राणी सफलता के द्वार तक पहुँच कर भी कई बार असपल हुआ, सुख-शांति के शिखर पर पहुँचने के लिये प्रयत्नशील रहने पर भी पहुँच नहीं पाया; उन विकारों में, उन कमजोरियों में, उन कषायों में सबसे बड़ा विकार, सबसे बड़ी कमजोरी और सबसे बड़ी कषाय है क्रोध।

क्रोध आत्मा की एक ऐसी विकृति है, ऐसी कमजोरी है, जिसके कारण उसका विवेक समाप्त हो जाता है, भले-बुरे की पहिचान नहीं रहती। जिस पर क्रोध आता है, क्रोधी उसे भला-बुरा कहने लगता है, गाली देने लगता है, मारने लगता है, यहाँ तक कि स्वयं की जान जोखम में डालकर भी उसका बुरा करना चाहता है। यदि कोई हितैषी पूज्य पुरुष भी बीच में आवे तो उसे भी भला-बुरा कहने लगता है, मारने तक को तैयार हो जाता है। यदि इतने पर भी उसका बुरा न हो तो स्वयं बहुत दुखी होता है, अपने ही अंगों का घात करने लगता है, माथा कूटने लगता है, यहाँ तक कि विषादि-भक्षण करके मर तक जाता है।

लोक में जितनी भी हत्याएँ और आत्म-हत्याएँ होती हैं, उनमें से अधिकांश क्रोधावेश में ही होती हैं। क्रोध के समान आत्मा का कोई दूसरा शत्रु नहीं है।

क्रोध करनेवाले को जिस पर क्रोध आता है, वह उसकी ओर ही देखता है, अपनी ओर नहीं देखता। क्रोधी को जिस पर क्रोध आता है, उसी की गलती दिखायी देती है, अपनी नहीं। चाहे निष्पक्ष विचार करने पर अपनी ही गलती निकले, पर क्रोधी विचार करता ही कब है? यही तो उसका अंधापन है कि उसकी दृष्टि पर की ओर ही रहती है और वह भी पर में विद्यमान-अविद्यमान दुर्गुणों की ओर ही। गुणों को तो वह देख ही नहीं पाता। यदि उसे पर के गुण दिखायी दे जावें तो फिर उस पर क्रोध ही क्यों आवे, फिर तो उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी।

यदि मालिक के स्वयं के पैर से ठोरक खाकर काँच का गिलास फूट जावे तो एकदम चिल्लाकर कहेगा कि इधर बीच में गिलास किसने रख दिया? उसे गिलास रखनेवाले पर क्रोध आयेगा, स्वयं पर नहीं। वह यह नहीं सोचेगा कि मैं देखकर क्यों नहीं चला? यदि वही

गिलास नौकर के पैर की ठोकर से फूटे तो चिल्लकार कहेगा – देखकर नहीं चलता, अंधा है। फिर उसे बीच में गिलास रखनेवाले पर क्रोध न आकर ठोकर देनेवाले पर आयेगा, क्योंकि बीच में गिलास रखा तो स्वयं उसने है। गलती हमेशा नौकर की ही दिखेगी चाहे स्वयं ठोकर दे, चाहे नौकर के पैर की ठोकर लगे, चाहे स्वयं गिलास रखे, चाहे दूसरे ने रखा हो।

यदि कोई कह दे कि गिलास तो आप ही ने रखा था और ठोकर भी आपने मारी, अब नौकर को क्यों डाँटते हो ? तब भी यही बोलेगा कि इसे उठा लेना चाहिये था, इसने उठाया क्यों नहीं ? उसे अपनी भूल दिख ही नहीं सकती, क्योंकि क्रोधी पर में ही भूल देखता है, स्वयं में देखने लगे तो क्रोध आयेगा कैसे ? यही कारण है कि आचार्यों ने क्रोधी को क्रोधांध कहा है।

क्रोधांध व्यक्ति क्या-क्या नहीं कर डालता ? सारी दुनिया में मनुष्यों द्वारा जितना भी विनाश होता देखा जाता है, उसके मूल में क्रोधादि विभाव ही देखे जाते हैं। द्वारिका जैसी पूर्ण विकसित और संपन्न नगरी का विनाश द्वीपायन मुनि के क्रोध के कारण ही हुआ था। क्रोध के कारण सैकड़ों घर-परिवार टूटते देखे जाते हैं। अधिक क्या कहें – जगत में जो कुछ भी बुरा नजर आता है, वह सब क्रोधादि विकारों का ही परिणाम है। कहा भी है – 'क्रोधोदयाद् भवति कस्य न कार्यहानि:' क्रोध के उदय में किसकी कार्य हानि नहीं होती, अर्थात् सभी की हानि होती है।

क्रोध एक शांति भंग करनेवाला मनोविकार है। वह क्रोध करनेवाले की मानसिक शांति तो भंग कर ही देता है, साथ ही वातावरण को भी कलुषित और अशांत कर देता है। जिसके प्रति क्रोध-प्रदर्शन होता है, वह तत्काल अपमान का अनुभव करता है और इस दु:ख पर उसकी भी त्योरी चढ़ जाती है। यह विचार करनेवाले बहुत थोड़े निकलते हैं कि हम पर जो क्रोध प्रकट किया जा रहा है, वह उचित है या अनुचित।

क्रोध का एक खतरनाक रूप है बैर। बैर, क्रोध से भी खतरनाक मनोविकार है। वस्तुत: वह क्रोध का ही एक विकृतरूप है। बैर, क्रोध का आचार या मुरब्बा है। क्रोध के आवेश में हम तत्काल बदला लेने की सोचते हैं। सोचते क्या हैं – तत्काल बदला लेने लगते हैं। जिसे शत्रु समझते हैं, क्रोधावेश में उसे भला-बुरा कहने लगते हैं, मारने लगते हैं। पर जब हम तत्काल कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न कर मन में ही उसके प्रति क्रोध को इस भाव से दबा लेते हैं कि अभी मौका ठीक नहीं है, अभी प्रत्याक्रमण करने से हमें हानि हो सकती है, शत्रु प्रबल है,

मौका लगने पर बदला लेंगे; तब वह क्रोध बैर का रूप धारण कर लेता है और वर्षों दबा रहता है तथा समय आने पर प्रकट हो जाता है।

ऊपर से देखने पर क्रोध की अपेक्षा यह बैर विवेक का कम विरोध नजर आता है, पर यह है क्रोध से भी अधिक खतरनाक; क्योंकि यह योजनाबद्ध विनाश करता है, जबकि क्रोध विनाश की योजना नहीं बनाता, तत्काल जो जैसा संभव होता है, कर गुजरता है। योजनाबद्ध विनाश सामान्य विनाश से अधिक खतरनाक और भयानक होता है।

यद्यपि जितनी तीव्रता और वेग क्रोध में देखने में आता है - उतना बैर में नहीं, तथापि क्रोध का काल बहुत कम है, जबकि बैर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

क्रोध और भी अनेक रूपों में पाया जाता है। झल्लाहट, चिड़चिड़ाहट, क्षोभ आदि भी क्रोध के ही रूप हैं। जब हमें किसी की कोई बात या काम पसंद नहीं आता है और वह बात बार-बार हमारे सामने आती है तो हम झल्ला पड़ते हैं। बार-बार की झल्लाहट चिड़चिड़ाहट में बदल जाती है। झल्लाहट और चिड़चिड़ाहट असफल क्रोध के परिणाम हैं। ये एक प्रकार से क्रोध के हल्के-फुल्के रूप हैं। क्षोभ भी क्रोध का ही अव्यक्तरूप है।

ये सभी विकार क्रोध के ही छोटे-बड़े रूप है। सभी मानसिक शांति को भंग करनेवाले हैं, महानता की राह के रोड़े हैं। इनके रहते कोई भी व्यक्ति महान नहीं बन सकता, पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता। यदि हमें महान बनना है, पूर्णता को प्राप्त करना है तो इन पर विजय प्राप्त करनी ही होगी, इन्हें जीतना ही होगा। पर कैसे ? आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के अनुसार -

''अज्ञान के कारण जब तक हमें पर-पदार्थ इष्ट-अनिष्ट प्रतिभासित होते रहेंगे, तब तक क्रोधादि की उत्पत्ति होती ही रहेगी, किंतु जब तत्त्वाभ्यास के बल से पर-पदार्थों में से इष्ट-अनिष्ट बुद्धि समाप्त होगी, तब स्वभावत: क्रोधादि की उत्पत्ति नहीं होगी।''

आशय यह है कि क्रोधादि की उत्पत्ति का मूल कारण, हमारे सुख-दु:ख का कारण दूसरों को मानता है। जब हम अपने सुख-दु:ख का कारण अपने में खोजेंगे, उनका उत्तरदायी अपने को स्वीकारेंगे, तो फिर हम क्रोध करेंगे किस पर ?

अपने अच्छे-बुरे और सुख-दु:ख का कर्ता दूसरों को मानना ही क्रोधादि की उत्पत्ति का मूल कारण है। [उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

समयसार प्रवचन—

अनेकांतमयी मूर्ति

सरस्वती देवी

आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार पर श्री अमृतचंद्राचार्य द्वारा लिखित आत्मख्याति टीका मंगलाचरण के द्वितीय एवं तृतीय छंद पर पूज्य कानजीस्वामी द्वारा दिये गये प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

अब, निम्नांकित द्वितीय कलश में आचार्य अमृतचंद्र सरस्वती को आशीर्वचनरूप नमस्कार करते हैं:-

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥२॥

प्रथम कलश द्वारा शुद्धात्मा को नमस्कार करके, इस कलश में सरस्वती की अनेकांतमयी मूर्ति को नमस्कार किया है। जिसमें अनेक अंत (धर्म) हैं, उसका ज्ञान तथा उसका अनुसरण करनेवाली वाणी, इसप्रकार भाव-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान तथा सर्वज्ञ-अनुसारिणी वाणी को नमस्कार किया है।

सरस्वती की सत्यार्थ मूर्ति कौन है ? भावश्रुतज्ञान, केवलज्ञान एवं तदनुसारिणी वाणी, सरस्वती की यथार्थ मूर्ति है। क्योंकि भावश्रुतज्ञान अनंत धर्मोंवाले स्वात्मतत्त्व को परोक्षरूप से देखता है, जानता है, अतः वह सरस्वती की यथार्थ मूर्ति है। केवलज्ञान अनंत धर्मोंसहित स्वात्मतत्त्व को तथा सर्व पदार्थों को प्रत्यक्षरूप से जानता-देखता है, अतः वह सरस्वती की यथार्थ मूर्ति है। द्रव्यश्रुतवाणी भी अनंत धर्मोंवाले आत्मा को वचन द्वारा बताती है, अतः वह भी सरस्वती की यथार्थ मूर्ति होने से उसे नमस्कार किया है।

यहाँ कलशकार श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने सरस्वती की मूर्ति में ज्ञान और वाणी दोनों को नमस्कार किया है, जबकि कलश टीका में पंडित राजमलजी ने सरस्वती की मूर्ति के रूप में सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी वाणी को नमस्कार किया है। कौन सी वाणी नमस्कार करनेयोग्य

है ? जो 'पयश्न्ती' अर्थात् सर्वज्ञ-वीतराग के स्वरूप की अनुभवशील है, वह वाणी वंदनीय है। अनुभवशील अर्थात् जो सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी है, उस वाणी को नमस्कार किया है।

भावश्रुतज्ञान अनंत धर्मों सहित त्रिकाली-आत्मतत्त्व को जानता है। केवलज्ञान भी त्रिकालीद्रव्य को प्रत्यक्ष जानता है और वाणी तदनुसार त्रिकाली द्रव्य को बताती है, अतः पूज्य है। ज्ञानरूप भावसरस्वती तथा वाणीरूप द्रव्यसरस्वती दोनों में, अनंत धर्मात्मक वस्तुस्वरूप की प्रकाशक होने से, अनंत धर्म हैं। परद्रव्यों से, उनके गुण पर्यायों से भिन्न, तथा परनिमित्त से होनेवाले अपने विकारों से कथंचित् भिन्न, ऐसे निज आत्मतत्त्व को सरस्वती की मूर्ति देखती है, दिखाती है, अतः पूज्य है।

कोई प्रश्न करे कि अनंत धर्मात्मक आत्मा में कौन-कौन से धर्म हैं ? प्रत्येक वस्तु में सतपना (अस्तित्व), वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि गुण हैं और उनकी प्रतिसमयवर्ती पर्यायें होती हैं; और एकपना, अनेकपना, नित्यपना, अनित्यपना आदि अनेक धर्म हैं; वे अपेक्षित धर्म हैं, अतः उनकी पर्यायें नहीं होतीं। इसप्रकार सामान्य धर्म वचनगोचर और ज्ञानगोचर हैं, परंतु अन्य अनेक धर्म ऐसे भी हैं जो वचन अगोचर हैं, परंतु ज्ञानगोचर हैं। आत्मा भी वस्तु होने से उसमें अनंत धर्म हैं। आत्मा में एक चेतन नामक असाधारण धर्म है, जो अनंत जीवों में निज-स्वरूप भिन्न-भिन्न रहते हुए भी प्रत्येक आत्मा के अनंत धर्मों में व्यापक है। ऐसे चेतनस्वरूप अनंत धर्मों वाले आत्मा को भावश्रुतज्ञान और केवलज्ञान देखता है, तथा वाणी ऐसे आत्मा को दिखाती है। इसप्रकार सर्व जीवों को कल्याणकारी ज्ञानरूप तथा वचनरूप सरस्वती की मूर्ति पूज्य है।

अब, आचार्यदेव तृतीय कलश द्वारा समयसार की टीका करने के प्रतिज्ञागर्भित फल की प्रार्थना करते हैं :-

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

आचार्यदेव कहते हैं कि इस समयसार शास्त्र की टीका से मेरी अनुभूति की परम विशुद्धि हो। शब्दार्थ तो यह हुआ कि शास्त्र की टीका करने से अनुभूति की परम विशुद्धि हो, परंतु टीका की रचना करने का भाव तो विकल्प है, शुभराग है, उससे शुद्ध चैतन्यमूर्ति की परिणति निर्मल नहीं होती।

शब्दार्थ तभी सफल कहा जायेगा, जबकि उसका भावार्थ ग्रहण किया जाये। यहाँ भावार्थ यह है कि दृष्टि में तो शुद्धचैतन्यमूर्ति ही है, परंतु अनादि की अस्थिरतारूप रागादि कलुषितता परिणति में वर्त रही है, वह इस टीका के रचना काल में द्रव्य पर दृष्टि की विशेष एकाग्रता होने पर रागादि रहित उत्कृष्ट निर्मल हो।

पर्याय में, विकारी परिणति में व्याप्य-व्यापकरूप से मैं परिणमता हूँ, तब निमित्तरूप में मोहकर्म का उदय होता है। अस्थिरताजन्य अशुद्धता पर्याय में अनादि से वर्तती है, वह मुझे कलंक समान है। अत: टीका रचना के फल में उस कलंक का नाश होकर परम निर्मलता हो, ऐसी आचार्यदेव भावना भाते है।

सप्तम गुणस्थान में, शुद्धोपयोग के काल में भी अबुद्धिपूर्वक अशुद्धता होती है, अत: मेरी परिणति निरंतर कलमाषित (मैली) है, ऐसा कहा। उस मैल के नाश का उपाय महाव्रतादि व्यवहारचारित्र नहीं, अपितु शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसे निज स्वरूप में एकाग्रता ही उसका उपाय है। द्रव्यदृष्टि से मैं चैतन्य मूर्ति ही हूँ - इसप्रकार दृष्टि के जोर से परिणति विशुद्ध होती है।

कलशटीका में टीकार ने 'अनुभूति' अर्थात् अतीन्द्रिय सुखस्वरूप ही हूँ, ऐसा कहा है। समयसारजी की ७३ वीं गाथा में भी अनुभूति को शुद्धद्रव्य कहा है तथा प्रवचनसार गाथा २०२ में भी स्वानुभूति को शुद्धद्रव्य कहा है। द्रव्यदृष्टि से देखने पर अनंत सुखस्वरूप चैतन्यमूर्ति ही हूँ। आत्मा पर्याय में ऐसा जानता है कि मैं तो निर्मल पर्याय से भी भिन्न अनंत सुखस्वरूप चैतन्यमूर्ति ही हूँ। ध्रुव तो कूटस्थ है, अपरिणामी है; अत: वह ऐसा नहीं जानता कि मैं ध्रुव हूँ, परंतु ध्रुव के सम्मुख हुई निर्मल परिणति में आत्मा ऐसा जानता है कि 'मैं ध्रुव हूँ।' आचार्यदेव कहते हैं कि मेरी दृष्टि में ऐसे शुद्धद्रव्य का स्वीकार होते हुए भी पर्याय में अस्थिरतारूप अशुद्धता निरंतर वर्तती है, जो कि मुझे कलंक समान है। अत: इस टीका के रचना काल में द्रव्य तरफ के जोर की विशेषता से, एकाग्रता से वह रागादि अशुद्ध परिणति नष्ट होकर मेरी परिणति

परम विशुद्धिमय हो, इसप्रकार टीका के फल की प्रार्थना की है। इसके अतिरिक्त ख्याति, लाभ पूजादि किसी की इच्छा नहीं है, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।

इसप्रकार इस कलश द्वारा समयसारजी की टीका करने की प्रतिज्ञा करके, साथ-साथ उसके फलरूप परिणति परम विशुद्ध हो, यह प्रार्थना की है।

सबसे मूल्यवान वस्तु : एकमात्र आत्मा

श्रीमद् रायचंद्रजी ने एक बार एक व्यक्ति से पूछा कि यदि तुम्हारे एक हाथ में घी से भरा घड़ा और दूसरे हाथ में छाछ से भरा घड़ा हो और रास्ते में चलते-चलते ठोकर लग जाये तो उस समय तुम घी का घड़ा संभालोगे या छाछ का ?

उस व्यक्ति ने तुरंत उत्तर दिया कि घी का घड़ा संभालेंगे, छाछ का क्या मूल्य ?

तब श्रीमद्जी ने उसे समझाया कि भाई ! घी के घड़े के समान आत्मा बहुत मूल्यवान वस्तु है। छाछ के घड़े के समान शरीर, धन, परिवार, महल, मोटर, बाग-बगीचे ये सभी वस्तुएँ अत्यंत तुच्छ हैं।

आत्मार्थी जीव, दुर्लभ मनुष्य भव पाकर निज आत्मा की संभाल में अपना सारा पुरुषार्थ लगाते हैं। शरीरादि वस्तुएँ तो अपनी संभाल बिना ही पूर्वकृत पुण्य-पाप अनुसार परिणमित होती हैं। स्वयं परिणमती इन देहादिक की संभाल में आत्मार्थी जीव नहीं रुकते।

अत: अनादि से जिसका यत्न नहीं किया, ऐसी अपनी आत्मा के संभाल में ही सावधान होना चाहिये।

स्वभाव की लगनी स्वयं ही अपना मार्ग खोज लेती है

सम्मानीय बहिन श्री चंपाबेन के ६३वें जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में समय-समय पर अभिव्यक्त उनके ही कुछ विचार-बिंदु आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये यहाँ प्रस्तुत हैं।

आत्मा की प्रीतिपूर्वक अंदर से जाग्रत तत्त्व-निर्णय और फिर आत्म-बहुमानपूर्वक बारंबार उसका अतिशय अभ्यास, ऐसे सतत प्रयत्न द्वारा जीव को सम्यग्दर्शन होता है।

जैसे, नारियल का मीठा रस और छाल आदि भिन्न हैं, उसीप्रकार चैतन्यरस और रागादि का स्वाद अत्यंत भिन्न है। इसप्रकार स्वाद की भिन्नता भासित होनी चाहिये।

जिसप्रकार स्तंभ (खंभा) और शरीर भिन्न हैं, वस्त्र और देह भिन्न हैं; उसीप्रकार चैतन्य और राग भिन्न हैं, सम्यग्दृष्टि को ऐसी अत्यंत भिन्नता भासित होती है। अनुभव के पहले भी जिसने इस भिन्नता का निर्णय किया है, वह भी अतिशय पुरुषार्थ करके राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव शीघ्र ही करेगा। निर्णय हो और फिर तुरंत अनुभव न हो, ऐसा नहीं बनता।

जो आत्मार्थी है..... जिसे जगत के किसी पदार्थ में सुख भासित नहीं होता, और अपनी पर्याय में देखता है तो वहाँ भी दु:ख ही भासित होता है; वह जीव जगत में नहीं, पर्याय में नहीं, मेरा सुख मेरे स्वभाव में ही है, ऐसा निश्चय करके आत्मलगनी के बल से स्वयं ही सुखरूप परिणमित हो जाता है। आत्मा ही चाहिए, अन्य कुछ नहीं; ऐसी जिसे वास्तविक आत्मलगनी लगी हो, उसे आत्मा मिलता ही है। वास्तविक लगनवाले को आत्मा न मिले, ऐसा नहीं होता।

यथार्थ लक्ष्यपूर्वक आत्मलगनी सम्यग्दर्शन का कारण है, सम्यक्त्व की निकटता है। इस लगनी के भाव को श्रद्धा का उसप्रकार का क्षयोपशम जैसा कहा... सम्यग्दर्शन होने की तैयारीरूप यह क्षयोपशम की ओर झुकता हुआ भाव है। ऐसे जीव को सम्यक्त्व के पुरुषार्थ की दिशा खुल गयी है... अब उस दिशा में ही आगे बढ़ते हुए उसे अवश्य सम्यग्दर्शन होगा। तीव्र पुरुषार्थी होगा तो शीघ्र होगा, अन्यथा कुछ समय लगेगा... पुरुषार्थ चालू ही है, अत: अधैर्य

नहीं है... अधैर्य से तो आकुलता बढ़ जाती है। यदि तीव्र अधैर्य के कारण हताश हो जायेगा तो प्रयत्न की उग्रता ठंडी पड़ जायेगी।

एक तो सम्यग्दर्शन के अभाव का दु:ख और फिर अधीरज की आकुलता का दु:ख... अत: पुरुषार्थी तो धैर्यपूर्वक प्रयत्न चालू ही रखता है। इस लक्ष्यवाले जीव को राग और ज्ञान की भिन्नता अभी उपयोग में नहीं आयी अर्थात् राग से भिन्न ज्ञान की तरफ उपयोग नहीं हुआ, परंतु उसके लिये वह प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता है, वैसे-वैसे अधिक से अधिक सूक्ष्मता से भिन्नता भासित होती जाती है, आत्मरस बढ़ता जाता है, मिथ्यात्व टूटता जाता है।

जिज्ञासु को दु:ख.... दु:ख और दु:ख ही भासता है.... और उससे छूटना चाहता है। जैसे, माता को प्रियपुत्र के वियोग का दु:ख लगता है, वैसे पात्र को दु:ख लगता है... वास्तविकपने तो स्वभावसुख भासित हुए बिना मिथ्यात्व का दु:ख भी पकड़ में नहीं आता। सुपात्र जीव को जगत में कहीं सुख भासित नहीं होता और सुख तो चाहता है, अत: अंतरस्वभाव में ही झुकता है। जगत में सुख भासित नहीं होता, अत: जगत में तो उपेक्षित वृत्ति हो गयी है, और पर्याय में दु:ख है; अत: उसका प्रयत्न स्वभाव की ओर ही रहता है। ऐसा जीव स्वभावसुख प्राप्त करके ही चैन लेता है।

जगत में ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है जिसकी उपमा देकर सम्यग्दर्शन के सुख का वर्णन किया जा सके... यह सुख तो अनुभवगम्य है। जैसा आत्मद्रव्य है, वैसा ही यह सुख है। आत्मद्रव्य ही उसका उदाहरण है। समकिती को निरंतर स्वभावसुख का सहज वेदन होता रहता है।

सामान्यतया तत्त्व-निर्णय होते हुए भी गहराई में जगत के पदार्थ में कहीं भी सुख-बुद्धि रह जाती है, या किसी मंद शुभपरिणाम में आश्रयबुद्धि रह जाती है, वहाँ उस जीव की पर्याय अटक जाती है तो भी वास्तविक जिज्ञासु और आत्मार्थी तो कहीं भी नहीं अटकता। जानपना की कोई भी भूल हो तो भी स्वभाव की लगनी के बल से निकल जाती है। आत्मार्थी जीव की परिणति कहीं नहीं अटकती। वह नियम से अपना आत्मा प्राप्त करता ही है।

स्वभाव की लगनी स्वयं ही अपना मार्ग खोज लेती है। ●

शुद्ध निश्चयनियम किसे होता है ?

चारित्र की प्रधानता से है कथन जिसमें, ऐसे महाशास्त्र 'नियमसार' में कुन्दकुन्दाचार्यदेव शुद्ध निश्चयनियम का स्वरूप दिखाते हुए लिखते हैं :-

सुहअसुहवयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा॥१२०॥

महातपोधन मुनि कैसे होते हैं? – जिन्होंने द्रव्यस्वभाव के आश्रय से पर्याय में महातपरूपी लक्ष्मी प्रगट की है, जिन्होंने स्वरूप के उग्र अवलंबनरूपी दबाव द्वारा आनंद के नाथ आत्मा को दबाकर पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद की फुहारें प्रगट की हैं, वे महातपोधन मुनि हैं। ऐसे मुनि सूक्ष्म कर्मों को भी मूल से उखाड़ देने में समर्थ, ऐसे निश्चयप्रायश्चित्त में सदा लीन रहते हैं।

शुभाशुभभावरूप प्रशस्त-अप्रशस्त वचन-रचना, निमित्त की अपेक्षा से भवरूपी बेल की जड़ है तथा उपादान की अपेक्षा से अपने में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि भाव, भवरूपी बेल की जड़ है। निश्चयप्रायश्चित्त में अर्थात् त्रिकाल प्रायश्चित्तस्वरूप वस्तु में ही जो लीन हैं, ऐसे महातपोधन, भवरूपी बेल के मूल-कंदात्मक शुभाशुभभावस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त वचन-रचना को तथा मोह-राग-द्वेषादि पर-भावों को निवारते हैं, छोड़ते हैं।

इन्द्रियजन्य भ्रांतिगत सुख, ये तो विष के कटोरे हैं। मुनि तो अतीन्द्रिय आनंद के कटोरे पीने में संलग्न हैं। अतीन्द्रिय महासागर ऐसे आत्मा के उग्र अवलंबन द्वारा जिन्होंने पर्याय में आनंद सागर को उल्लासित किया है, ऐसे तपस्वी ने गुण-गुणी भेद के विचारों को, शुभविकल्पों को छोड़ा है, निवारा है।

देखो! आचार्यदेव कहते हैं कि पर्यायरहित निज कारणपरमात्मतत्त्व में एकाग्रता करने से पर्याय में आनंद का स्रोत बहने लगता है। जैसे – कोई सरोवर छलाछल भरा हो, उसमें जरा-सा ढाल दे दिया जाए तो पानी का प्रवाह बाहर बहने लगता है; उसीप्रकार अतीन्द्रिय आनंद का सागर ऐसा निज परमात्मतत्त्व आनंद से छलाछल भरा है, उसमें एकाग्रतारूपी ढाल देने से प्रकट पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद प्रवाहित होने लगता है। सुख-शांति प्राप्त करने का यह एक ही मार्ग है। वस्तुस्थिति जैसी है, वैसी स्वीकार किये बिना अनंतकाल में भी मुक्ति नहीं होगी, इसलिए वस्तुस्वरूप को यथार्थरूप से समझकर निर्णय करना चाहिए। ●

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

द्रव्यसंग्रह के मंगलाचरण में श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करते हैं। अंतर के चिदानंदस्वभाव की दृष्टिपूर्वक उसमें एकाग्रता से क्षण-क्षण में वीतरागी शुद्धता बढ़ती जाती है, इसका नाम एकदेश शुद्धनिश्चयनय से भावनमस्कार है। जहाँ तक स्वयं, स्वयं के ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करके आंशिक वीतरागभाव प्रगट नहीं करता, वहाँ एक भगवान को सही-सत्य भावनमस्कार नहीं होता। जैसा भगवान का स्वभाव है, वैसा ही स्वयं का स्वभाव है, ऐसे स्वभाव की दृष्टि से जितनी शुद्धता प्रगट हुई, उतना भाव-नमस्कार है।

देखो! धर्मी को चैतन्यस्वभाव की दृष्टि में ऐसी शुद्धता तो क्षण-क्षण बढ़ती ही है, लेकिन यहाँ मंगलाचरण में जब पर को नमस्कार करने का विकल्प उठता है, होता है, तब अंदर में स्वयं के स्वभाव ओर की जितनी एकाग्रता होती है, उसको निश्चय से भावनमस्कार कहा, और पर की ओर के झुकावरूप भाव का विकल्प हुआ, उठा, उसको तथा वाणी को द्रव्यनमस्कार कहा।

इसप्रकार निश्चय प्रतिक्रमण, वंदन, स्तुति वगैरह में भी ऐसा ही समझना कि जिस-जिस क्षण जिसप्रकार का विकल्प हुआ, उस-उस क्षण स्वभाव ओर की एकाग्रता को वह नाम दिया है। प्रतिक्रमण का विकल्प हुआ, तब उस शुद्धता को निश्चयप्रतिक्रमण कहा, और स्तुति का विकल्प हुआ, तब उस शुद्धता के अंश को ही निश्चयस्तुति कहा है। इसप्रकार स्वभाव के आश्रय से जो शुद्धता हुई, उसमें ही निश्चयस्तुति, निश्चय प्रतिक्रमण वगैरह आ जाते हैं।

यहाँ शुद्धता के अंश को एकदेश शुद्ध निश्चयनय कहा है। यह भी मूल शुद्ध निश्चय नहीं है, त्रिकाली एकरूप चिदानंदस्वभाव - यह परम शुद्ध निश्चय है तथा उस समय स्तुति का विकल्प हुआ है, और वाणी निकली है, इससे उस वाणी को द्रव्यस्तुति कहा जाता है, यह

भी असद्भूतव्यवहार है। वाणी का आत्मा में अभाव है, किंतु उस समय उस जाति का विकल्प हुआ है, इसलिये वाणी को भी उपचार से द्रव्यस्तवन कहा। इसप्रकार दो नयों का वर्णन किया।

परमशुद्धनिश्चयनय से तो स्वयं का आत्मा सिद्ध समान है। उस स्वभाव में एकाग्रता से सतावें गुणसथान की निर्विकल्प दशा हुई, वहाँ तो वंद्य-वंदक भाव का विकल्प नहीं। छठवें गुणस्थान तक ही वंद्य-वंदक भाव का विकलप होता है।

देखो! यह वस्तुस्वरूप समझने जैसा है। एकदेश शुद्धनिश्चय कहो, भावस्तवन कहो, संवर और निर्जरा कहो, अथवा धर्म कहो, वह एक ही है। लेकिन वह अखंड चिदानंदस्वभाव की दृष्टि और आश्रय से ही प्रकट होता है। बीच में विकल्प हुआ, वह भी द्रव्यस्तवन में गिना जाता है और वह पुण्य-बंध का कारण है।

अहो! मैं एक समय में परिपूर्ण सामर्थ्य का पिण्ड हूँ, अनंत लोकालोक का एक समय में जान लेना मेरी पर्याय का सामर्थ्य है। इसप्रकार स्वयं के स्वभाव की, वाणी से महिमा करना, यह द्रव्यस्तवन है और वहाँ स्वभावदृष्टि से जो शुद्धता प्रगट हुई है, वह भावस्तवन है। ऐसे भावस्तवन बिना व्यवहार स्तवन भी सत्य नहीं होता। ज्ञानी को ही निश्चयस्तवनसहित व्यवहारस्तवन होता है। अज्ञानी को निश्चय अथवा व्यवहार स्तवन नहीं होहता।

देखो! स्वयं के स्वभाव की दृष्टि करके उसकी आराधना की, उसमें जिनेन्द्र भगवान का स्तवन आ जाता है। आत्मा के भान बिना जिनेन्द्र की स्तुति भी सत्य-यथार्थ नहीं होती। इसप्रकार स्तुति का वर्णन किया।

अब नमस्कार करनेवाला कौन है और वंदनीय कौन है? यह कहते हैं। यहाँ नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती तो नमस्कार करनेवाले हैं, वे श्री जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करते हैं। किसप्रकार, कि मस्तक झुकाकर सर्वदा नमस्कार करते हैं।

देखो! मस्तक झुकाकर कुछ चौबीस घंटे नमस्कार नहीं करते, किंतु अंतर में चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से प्रतिक्षण शुद्धता ही बढ़ती जाती है, ज्ञायकस्वभाव का ही सदा आदर करते हैं, इसलिये भगवान को हमेशा नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहा।

मुनि को अल्प निद्रा हो, उस निद्रा के समय भी चिदानंदस्वभाव का जितना अवलंबन

है, उतनी तो शुद्धि बढ़ती जाती है। उससे नींद के समय भी भगवान को नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहा है। अंदर में परमार्थ स्वभाव में हमेशा नमस्कार होता है, इसीलिए व्यवहार में भी सदा नमस्कार करने का कह दिया है। कोई हमेशा ऐसा विकल्प नहीं होता, किंतु अंदर की वीतराग दशा बढ़ती जाती है, इससे हमेशा नमस्कार होता ही रहता है।

जो संपूर्ण वीतरागदशा को प्राप्त हुए हैं, ऐसे श्री जिनेन्द्रदेव को नमस्कार किया है। श्री जिनेन्द्रदेव कैसे हैं? मोक्षपद को चाहनेवाले देवेन्द्रों से भी वे पूज्य हैं। सौ इन्द्र हैं, उनको मोक्षपद की ही अभिलाषा है। इन्द्रपद प्राप्त किया है, किंतु उसकी भावना नहीं है, ऐसे इन्द्र भी भगवान के चरण-कमलों में नमन करते हैं। अरे! जिनको इन्द्रपद की ऋद्धि का आदर नहीं, किंतु चिदानंदस्वभाव का ही आदर है, ऐसे इन्द्रों से भी भगवान वंदित हैं।

सौ इंद्र हैं, वे इसप्रकार हैं - भवनवासी देवों के ४०, व्यंतरदेवों के ३२, कल्पवासी देवों के २४, ज्योतिषी देवों के २, मनुष्यों का १, तिर्यंचों का १।

इस प्रकार सौ इन्द्र हैं, वे सब त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करते हैं। देखो! भगवान तो सर्वज्ञ हैं, उस सर्वज्ञता की महिमा है, और वहाँ पुण्य भी ऐसा है कि सौ इन्द्र भगवान को नमस्कार करते हैं। देखो, सनातन प्रणाली में सौ इन्द्र हैं, उनमें कम मानें तो वह सर्वज्ञ की परंपरा नहीं।

सर्वज्ञदेव ने जीव-अजीवतत्त्वों का वर्णन किया है। उनमें सहज शुद्ध चैतन्य वगैरह लक्षण का धारक तो जीव है। यहाँ शुद्ध चैतन्य की मुख्यता ली है, किंतु अशुद्धता वगैरह भी जीवद्रव्य में सन्निहित हैं। जीव की जितनी पर्यायें हैं, वे सब जीव में समाविष्ट हो जाती हैं, और ऐसे जीव से विपरीत लक्षणवाले यानि जड़ पदार्थ, वे अजीव हैं।

अजीवद्रव्य पाँच प्रकार के होते हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। देखो यह जीव-अजीव द्रव्यों का भेदज्ञान! जीव का सहज स्वभाव जानने-देखनेवाला है, और दूसरे पाँच अजीवद्रव्य हैं, वे जड़-अचेतन हैं। ऐसे जीव-अजीवद्रव्य भगवान ने केवलज्ञान में जाने हैं, और वाणी में - दिव्यध्वनि में उनका कथन आया है। ऐसे छह द्रव्यों में जीवद्रव्य ही उपादेय है।

लेकिन चैतन्य चमत्कार लक्षण को धारण करनेवाला जो शुद्ध जीवास्तिकाय है,

उसकी मुख्यतासहित पाँच अस्तिकाय का वर्णन किया है। कालद्रव्य अस्तिरूप है, लेकिन अस्तिकाय में काल के अतिरिक्त पाँच द्रव्य हैं, वे भगवान की वाणी में आये हैं – कहे गये हैं।

लेकिन भगवान की वाणी में सात तत्त्वों का भी कथन किया गया है। परम ज्ञानज्योति को धारण करनेवाला शुद्ध जीवतत्त्व है, वह सात तत्त्वों में मुख्य है, तथा दोषरहित परमशुद्धजीव सहित नौ पदार्थों का भी कथन भगवान की वाणी में कहा गया है। नव तत्त्वों को भगवान ने जुदे-जुदे बताये हैं। शुद्ध चैतन्यमय जीवतत्त्व है, वह पुण्य-पाप तत्त्व से भिन्न है। जीवतत्त्व तो अनादि-अनंत निर्दोष ज्ञायक परमात्मा है। इसप्रकार अर्थात् सामान्यतया भगवान की वाणी में जीव-अजीव आदि का स्वरूप कहा गया है। इसप्रकार पहिचान कर भगवान को नमस्कार किया है। इससे विपरीत कहनेवाला हो तो वह वंदनीय नहीं है।

किंतु भगवान कैसे हैं ? कि जिनवर वृषभ हैं। सम्यग्दृष्टि जीव ने आत्मा के भान से मिथ्यात्व और राग-द्वेष को जीता है, इससे वह 'जिन' है। चौथे गुणस्थान में असंयत सम्यग्दृष्टि भी 'जिन' है। देखो! यह तत्त्वदृष्टि की बात है। आत्मस्वभाव की दृष्टि हुई, वहाँ एकदेश वीतरागता हुई, इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि भी 'जिन' है। ऐसे सम्यग्दृष्टियों में छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए गणधर देव प्रमुख हैं, इसलिये वे 'जिनवर' हैं। चौथे-पाँचवें गुणस्थानवालों की अपेक्षा गणधरदेव को विशेष वीतरागता प्रगट हुई है, इससे वे 'जिनवर' हैं। इन जिनवरों में भी जो प्रधान हैं, ऐसे श्री तीर्थंकर परमात्मा 'जिनवर वृषभ' हैं, ऐसे जिनवर वृषभ को यहाँ नमस्कार किया है।

नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती कहते हैं कि अहा! मैं मेरे स्वभाव का आदर करता हुआ तीर्थंकरदेव को नमस्कार करता हूँ। यहाँ स्वभाव के आश्रय से जितनी शुद्धता प्रगट हुई, उतना भावनमस्कार है, वाणी में जो कहा गया वह द्रव्यनमस्कार है।

अहो! मैं मेरे हृदय में पूर्ण परमात्मदशा का श्रेष्ठ परमोत्तम स्थान रखता हूँ। पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट नहीं हुई, इसलिये परमात्मदशा प्राप्ति के लिये प्रस्थान करता हूँ। मैं मेरी परमात्मदशा का आदर करता हूँ।

समयसार में भगवान कुन्दकुन्द कहते हैं कि 'वंदित्तु सव्व सिद्धे'। अरे! मैं सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करता हूँ। मेरी आत्मा में सिद्धपणे की प्राप्ति को प्रस्थान करता हूँ।

इसप्रकार अध्यात्म शास्त्रों में सिद्ध को नमस्कार करने में आता है और इस अध्यात्म शास्त्र में अरिहंत भगवान को – परमात्मा को नमस्कार किया है। इसका खुलासा स्पष्ट करते हैं। वर्तमान काल में श्री तीर्थंकर भगवान की वाणी का उपकार है, इसलिये व्यवहार में तीर्थंकर का उपकार मानकर उनको यहाँ नमस्कार किया है। तीर्थंकर भगवान की वाणी उपकारी है, इसलिये पंच परमेष्ठियों में सिद्ध के पहिले अरिहंत को नमस्कार किया है। अहा! मुझे मेरे चिदानंदस्वरूप की प्राप्ति में भगवान की वाणी का उपकार है। ऐसा लक्ष्य में लेकर यहाँ प्रथम अरिहंत को नमस्कार किया है।

'आप्तपरीक्षा' में कहा है कि अर्हत् परमेष्ठी के प्रसाद से कल्याणरूप मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है। देखो, यह निमित्त का कथन है। स्वयं, स्वयं के आत्मा का भान करके मोक्षमार्ग प्रगट किया, तब स्वयं की प्रसन्नता के निमित्त में आरोप कर ऐसा कहा कि "अहो! भगवान की प्रसन्नता हुई! भगवान की कृपा से हमको मोक्षमार्ग मिला!" भगवान को कुछ कुपा का विकल्प नहीं। जिसने स्वयं के आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग प्रगट किया, वह जीव उपचार से 'भगवान की प्रसन्नता हुई' ऐसा कहता है।

सिद्ध भगवान को वाणी नहीं होती, अर्हत भगवान को वाणी होती है और वह कल्याण मार्ग का निमित्त है, इसलिये उत्तम मुनिवरों ने शास्त्र के आरंभ में – आदि में अर्हत परमेष्ठी के गुणों की स्तुति कर उनको नमस्कार किया है। [क्रमशः]

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।

रुचि और पुरुषार्थ

जिसे जिस वस्तु की रुचि होती है, वह उस वस्तु की मर्यादा नहीं बाँधता, उसकी हद नहीं होती। जिसे पैसे की रुचि होती है, वह लाख दो लाख अथवा करोड़ इत्यादि की मर्यादा नहीं बाँधता, किंतु जितना मिले उतना ले लेने की उसकी भावना होती है; उसीप्रकार जिसे आत्मा की रुचि होती है, वह आत्महित के लिये कोई मर्यादा नहीं बाँधता, आत्मा के अमर्यादित स्वभाव की रुचि होने पर उसमें कोई मर्यादा नहीं हो सकती, किंतु काल और पुरुषार्थ की मर्यादा को तोड़कर अमर्यादित पुरुषार्थ के द्वारा वह संपूर्ण स्वरूप को प्राप्त करता ही है।

'आत्मा का स्वरूप दो तीन दिन में अथवा अमुक समय तक प्राप्त हो सके तो ले लेना चाहिये।' इसप्रकार जो काल की मर्यादा को बाँधकर स्वरूप को प्राप्त करना चाहता है, उसे आत्मा की रुचि ही नहीं है। यदि वास्तव में आत्मा की रुचि हो तो मर्यादा न हो। अनंतानंत काल से संसार के कार्यों को करता आया है, फिर भी कोई काल की मर्यादा नहीं बनायी, किंतु यहाँ मोक्ष-साधन में मर्यादा बनाना चाहता है। समझना चाहिये कि उसको आत्मा की रुचि नहीं है, किंतु संसार की ही रुचि विद्यमान है।

यदि तुझे वास्तव में आत्मा की रुचि उत्पन्न हुई हो तो संसारमात्र छोड़कर आत्मा के लिये ही जीवन अर्पण कर दे। 'अरे! एक तो क्या, किंतु यदि अनंतानंत भव भी आत्मा के लिये देने पड़ें तो उन्हें भी अर्पित करने को तैयार हूँ। चाहे जो हो, किंतु मुझे तो आत्मा का हित करना ही है।' इसप्रकार आत्मरुचि करके काल की मर्यादा को तोड़ दे।

ऐसा करने से अनंत भव का नाश होकर अल्पकाल ही में तेरी मुक्ति अवश्य हो जायेगी। काल की मर्यादा को तोड़कर जो आत्मा के लिये अनंत भवों को अर्पित करने के लिये तैयार हुआ है, उसके भव हो ही नहीं सकता। आत्मा की ओर यथार्थ रुचि होने से उस रुचि के बल से काल-मर्यादा को तोड़कर उग्र पुरुषार्थ के द्वारा वह एक दो भव में ही मुक्त हो जायेगा, किंतु यदि काल की मर्यादा बाँधी तो अनंत काल तक भी जन्म-मरण का अंत नहीं होगा।

मर्यादा के लक्ष्य से मुक्ति का अमर्यादित पुरुषार्थ प्रगट नहीं होता। जिस ओर की रुचि होती है, उसी ओर का पुरुषार्थ जागृत होता है, इसलिये सर्वप्रथम क्षेत्र और काल की मर्यादा को तोड़कर रुचि को बदलो।

— पूज्य स्वामीजी

नयों के कथन का मूल प्रयोजन

सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'प्रवचनसार' नामक ग्रंथराज पर अमृतचंद्राचार्य ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक गहन टीका संस्कृत भाषा में लिखी है। ग्रंथराज का मर्म स्पष्ट करने के लिये टीका के अंत में परिशिष्ट के रूप में ४७ नयों का अभूतपूर्व वर्णन है, जो प्रत्येक आत्मार्थी को जानने योग्य है।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के अभिलाषी आत्मार्थियों को आत्मा की विविध योग्यतारूप अनंत धर्मों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी ने उक्त विषयों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रवचन समय-समय पर दिये हैं। उन्हीं में से कुछ नयों के संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

क्रियानय :- आत्मद्रव्य क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि सधे ऐसा है; खंम्भे द्वारा सिर फूटने से दृष्टि उत्पन्न होकर जिसे निधान प्राप्त होता है, ऐसे अंध की भाँति।

क्रियानय से आत्मा को अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होती है। जैसे, किसी अंध पुरुष की पत्थर के खंभे से सिर फूटने के कारण, सिर का रक्त विकार दूर हो जाने से, आँखें खुल जाती हैं और निधान प्राप्त होता है तदनुसार।

नय श्रुतज्ञान-प्रमाण का अंश है। प्रमाण-ज्ञान को प्रमाणता तभी प्राप्त होती है, जब अंतर्दृष्टि में विभाव तथा पर्याय के भेदों से रहित शुद्धात्मद्रव्यरूप ध्रुव की श्रद्धा का अवलंबन का जोर सतत वर्तता हो। ध्रुव स्वभाव के अवलंबन का बल ज्ञानी को सदैव वर्तता होने के कारण उसका ज्ञान सम्यक् प्रमाण है और उसी को यह क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय तथा निश्चयनय आदि नयों द्वारा वर्णित धर्मों का सच्चा ज्ञान होता है; अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को नहीं, क्योंकि उसे शुद्धात्मद्रव्यरूप ध्रुवस्वभाव की प्रतीति न होने से उसका ज्ञान अप्रमाण है, मिथ्या है।

क्रियानय से अर्थात् व्यवहार से निश्चय हो, ऐसा कहने की योग्यतारूप एक धर्म आत्मा में है। जिसप्रकार स्थापनानय से आत्मद्रव्य की पौद्गलिक स्थापना की जा सके (मूर्ति की भाँति) ऐसा एक धर्म है, उसीप्रकार साधकदशा में त्रैकालिक शुद्धात्मद्रव्य के आलंबन से प्रगट हुई शुद्ध परिणति के साथ वर्तते हुए शुभराग से मोक्ष हो, ऐसा भी एक उपचार-कथन का

धर्म है। देखो, यह नय बड़े समझने जैसा है। जिसप्रकार मूर्ति की स्थापना साक्षात् भगवान के स्मरणार्थ है, परंतु मूर्ति स्वयं ही भगवान का आत्मद्रव्य नहीं है; उसीप्रकार शुद्धपरिणति के साथ भूमिकानुसार वर्तते हुए शुभराग से सिद्धि हो, ऐसा कहने की योग्यतारूप धर्म आत्मा ने धारण कर रखे हैं। ऐसा कहकर, ऐसा ज्ञान करके, उसी समय शुद्धि के आश्रयभूत त्रिकाली सामान्यद्रव्य उपस्थित है, उसे लक्ष्य में लेने का प्रयोजन है। यह प्रत्येक नय साधक जीव के होते हैं। साधक को एक ही समय में शुद्धता और शुभरागरूप अशुद्धता – ऐसे दो अंश प्रकट पर्याय में एक साथ वर्तते हैं। पर्याय में जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, वह पर्याय का एक धर्म है, उसे ज्ञाननय देखता है, और उसी समय शुभराग की क्रियारूप शुभविकल्प भी पर्याय में होता है, वह पर्याय का एक धर्म है और उसे क्रियानय देखता है। वास्तव में तो शुभराग से मुक्ति तीन काल में होती ही नहीं। परंतु उसी समय साधक जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी विवेक द्वारा मुक्ति साध रहा है, उसे उस अपूर्ण दशा में भूमिका के योग्य जो शुभरागरूप क्रिया होती है, उसका ज्ञान करके, उससे सिद्धि होती है, ऐसा व्यवहार से कहने की योग्यतारूप एक धर्म को ज्ञानी जानता है। परंतु उस धर्म को देखकर भी ज्ञानी की दृष्टि तो एक शुद्ध चैतन्य सामान्य द्रव्य पर ही होती है।

अज्ञानी कहेगा कि शुभराग से मोक्ष हो, ऐसा एक धर्म है, इसलिये हम तो मात्र दया-दान-तप आदि शुभराग करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। उसे संत करुणापूर्वक समझाते हैं कि भाई! कुतर्क में अपनी बुद्धि को लगाये बिना जैसी वस्तुस्थिति है, तदनुसार समझने में बुद्धि को लगा। तेरी शंका के निवारणार्थ हम तुझसे पूछते हैं कि आत्मद्रव्य एक साथ अनंत धर्मों का स्वामी है, वह एक ही समय में है न? तो फिर आत्मद्रव्य ज्ञाननय द्वारा विवेक से साधता है, ऐसा भी एक धर्म उसी समय आत्मा ने धारण कर रखा है या नहीं? .....तो मात्र शुभराग से तू किसप्रकार मोक्ष प्राप्त करेगा? क्योंकि दूसरा ज्ञाननय तो तुझे प्रकट नहीं हुआ है। इसलिये क्रियानय की ओट में तू सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी विवेकधर्म प्रकट करने का निषेध न कर। भाई! यहाँ तो कहने की योग्यतारूप ऐसा भी एक धर्म है, ऐसा ज्ञानी जानता है, उसकी बात कही है। ऐसे नय को जाननेवाला ज्ञानी यही मानता है कि त्रैकालिक शुद्धचैतन्यमात्रवस्तु के आश्रय से मुक्ति साध्य है।

शुद्धात्मद्रव्य सामान्य के आश्रयरूप ज्ञाननय की, निश्चयनय की परिणति साथ वर्तती

होने से उस भूमिका में प्रवर्तमान क्रियानयरूप व्यवहार से निश्चय हुआ ऐसा कहा जाये, ऐसी एक योग्यता गिनी है। शुद्ध परिणति के साथ भूमिकानुसार वर्तते हुए शुभराग से मुक्ति होती है – ऐसी कहने की योग्यतारूप धर्म ज्ञानी को होता है, ऐसा ज्ञानी जानता है। परंतु उसके साथ ही वह दृढ़ताा से ऐसा जानता है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही मुक्ति होती है, ऐसे एक निश्चय धर्म का आत्मा स्वामी है।

शुद्धचैतन्यध्रुव के ध्यान से जिसे सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है, वैसे जीव को ऐसी पर्याय की योग्यताएँ होती हैं, परंतु उन-उन धर्मों के ज्ञान से या उनके अवलंबन से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। ऐसे विविध धर्मों का ज्ञान करके साधक जीव को सदैव त्रिकाल चैतन्यमूर्ति ध्रुव का ही, द्रव्यस्वभाव का ही, अवलंबन होता है।

जैसे, किसी अंध मनुष्य का चलते-चलते खंभे के साथ सिर टकराने से आँख का रक्त विकार दूर हो जाये और दृष्टि खुल जाने से उसे निधान की प्राप्ति हो, उसीप्रकार क्रियानय से शुद्धि के साथ वर्तते हुए शुभाचरण की मुख्यता से आत्मद्रव्य सिद्धि प्राप्त करता है।

देखो! यह दृष्टांत भी अत्यंत गंभीर है। अंध मनुष्य ने प्रयत्नपूर्वक सिर नहीं टकराया है, परंतु चलते-चलते टकरा गया है। उसीप्रकार ज्ञानी त्रैकालिक स्वभाव के आश्रय से शुद्धता की वृद्धि प्राप्त करते-करते अपनी अस्थिरता के दोष से दयादानादिरूप शुभभाव में भी स्थित है। इसलिये उपचार से ऐसा कहा है कि क्रियानय से मोक्ष साध्य है। परंतु निधान प्राप्त करने के लोभ से अंधे का अनुकरण करके कोई अन्य पुरुष यदि खंभे के साथ सिर फोड़ ले तो निधान प्राप्त करना तो दूर रहा, उल्टा मर जायेगा। उसीप्रकार ज्ञानी को अपनी भूमिका में जो शुभभाव होता है, उसका ज्ञान करके उससे मुक्ति होती है, ऐसा कहने की योग्यतारूप धर्म है। उससे कोई अज्ञानी, ज्ञानी का बाह्य अनुकरण करके शुभराग से मोक्ष साधने जायेगा तो उससे मोक्ष पाना तो दूर रहा, उल्टे संसार में भ्रमण करते रहना होगा।

ऐसे धर्म को जाननेवाला ज्ञानी, उसे जानकर वहाँ खड़ा नहीं रहता, अटक नहीं जाता अर्थात् वह ऐसे एक-एक धर्म का अवलंबन नहीं लेता; परंतु अपनी योग्यतारूपी ऐसे अनंत धर्मों को जानकर शुद्ध चैतन्यभावरूप त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव का ही अवलंबन लेता है।

●●

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – सम्यग्दर्शन का स्वभावभूत लक्षण क्या है ?

उत्तर – अनुभूति को लक्षण कहा है लेकिन वास्तव में तो वह ज्ञान की पर्याय है, सही लक्षण तो प्रतीति ही है। केवल आत्मा की प्रतीति, यह श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) का लक्षण है।

प्रश्न – सविकल्प द्वारा क्या निर्विकल्प नहीं होता है ?

उत्तर – सविकल्प द्वारा निर्विकल्प नहीं होता, किंतु कहा अवश्य जाता है। क्योंकि विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प में जाता है, यह बताने के लिये सविकल्प द्वारा ऐसा कहा जाता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है कि 'रोमांच होता है' अर्थात् वीर्य अंदर जाने के लिये उल्लासित होता है, ऐसा बताना है।

प्रश्न – जिनवाणी सुनने से ज्ञान होता है और पुण्यबंध भी होता है, उससे पैसा भी मिलता है, यह तो दोनों प्रकार से लाभ हुआ ?

उत्तर – सुनने से ज्ञान नहीं होता, पुण्य ही होता है।

प्रश्न – सुनने से थोड़ी-थोड़ी जानकारी तो होती है न ?

उत्तर – यह जानकारी वास्तव में जानकारी नहीं, वास्तविक जानकारी तो स्वसन्मुख हो, तब यथार्थ में जानकारी कही जाती है।

प्रश्न – ज्ञान में धारणरूप जानकारी तो होती है ?

उत्तर – धारणरूप जानकारी होती है लेकिन यथार्थ जानकारी तो सीधा स्वसन्मुख अंतर में आ जाये तब होती है। भगवान आत्मा को राग से लाभ मानना तो कलंक है।

प्रश्न – उपयोग में उपयोग है, इसका क्या मतलब ?

उत्तर – उपयोग में उपयोग अर्थात् सम्यग्दर्शन की निर्मल निर्विकल्प परिणति में उपयोग अर्थात् त्रैकालिक आत्मा आता है। आत्मा तो आत्मारूप उदासीन रूप में विद्यमान है, पर निर्विकल्प होने पर शुद्धोपयोग में त्रैकालिक उपयोगस्वरूप आत्मा जानी जाती है।

प्रश्न – क्या मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में सम्यग्दर्शन होता है ?

उत्तर – मतिज्ञानपूर्वक सम्यग्दर्शन होता है तो भी मतिज्ञान के समय आनंद का वेदन नहीं है। श्रुतज्ञान में आनंद का वेदन होता है अर्थात् श्रुतज्ञान में सम्यग्दर्शन का आनंद आता है, तो भी मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान में सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न – दृष्टि को स्थिर करने के लिये सामने की वस्तु स्थिर होनी चाहिये, लेकिन दृष्टि तो पलटती रहती है, वह किस तरह स्थिर हो ?

उत्तर – सामने स्थिर वस्तु हो तो उस पर नजर करने से दृष्टि स्थिर हो जाती है।

प्रश्न – नजर तो पलटती रहती है तो स्थिर कैसे रह सकती है ?

उत्तर – भले ही नजर (दृष्टि की पर्याय) स्थिर न रह सकती हो, तो भी ध्रुव, ऊपर नजर एकाग्र करता है, इससे सारी वस्तु नजर में आ जाती है, सारा आत्मद्रव्य दृष्टि में जाना जाता है।

मूल बात यह है कि अंदर में जो आश्चर्यकारी आत्मवस्तु है, उसकी अंदर से महिमा नहीं आती। द्रव्यलिंगी साधु हुआ लेकिन अंदर से महिमा नहीं आती। पर्याय के पीछे समूचा ध्रुव महाप्रभु विद्यमान है – इसकी महिमा, आश्चर्य भासित हो तो कार्य होता ही है। आत्मा अनंत-अनंत आनंद का धाम है, इसको विश्वास में लाना चाहिये। विश्वास से जहाज चलता है और समुद्र पार हो जाता है, ऐसा अंदर में आत्मा की प्रभुता का विश्वास आये, तब कार्य होता ही है।

जिसने जीवंत ज्योति ऐसे चैतन्य का अनादर करके राग को अपना माना है, 'राग मैं हूँ' ऐसा माना है, उसने अपनी आत्मा का ही घात किया है। जिससे लाभ मानता है, उसको स्वयं का माने बगैर उससे लाभ माना नहीं जा सकता। इसलिये राग से लाभ माननेवाला स्वयं का ही घात करनेवाला होने से दुरात्मा है, आत्मा का अनादर करनेवाला है, अविवेकी मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न – द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, और पर्याय में अशुद्धता है, वह कर्म के कारण नहीं होती, तब अशुद्धता कहाँ से आयी ?

उत्तर – द्रव्य-गुण त्रिकाल शुद्ध ही है और पर्याय में विकार होता है, वह पर्याय की उस समय की योग्यता से क्षणिक विकार होता है, कर्म से विकार नहीं होता। कर्म के निमित्त का लक्ष्य करके उस समय की योग्यता से ही विकार होता है। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा में विकार को पर-कारक की अपेक्षा ही नहीं है, ऐसा कहा है, क्योंकि विकार भी उस समय का स्वतंत्र परिणमन है।

प्रश्न – गोम्मटसार में कर्म को लेकर विकार होता है, ऐसा कहा है न ?

उत्तर – विकारी अवस्था होती है, वह पर्याय की योग्यता के स्वकाल से होती है, कर्म को लेकर नहीं होती। लेकिन निमित्त के आधीन होकर विकार होता है, उस कारण वहाँ निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कर्म को लेकर होता है, ऐसा कहा है। समयसार में भी विकार का कर्ता पुद्गल कर्म को कहा है। वहाँ दृष्टि का द्रव्य पर जोर वर्तता (रहता) है, यह बताने के लिये विकाररूप आत्मा नहीं होती, ऐसा बताकर जो अल्पविकार है, उसका कर्ता पुद्गल कर्म है, ऐसा कहने में आता है। प्रवचनसार में विकार का कर्ता जीव है, ऐसा कहा है। वहाँ यह विकारी परिणमन कर्म का नहीं, किंतु जीव का ही है, ऐसा बताया है। जहाँ जिस अपेक्षा से कहा हो, वहाँ वह अपेक्षा बराबर समझना चाहिये, तब ही वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा समझने में आ सकता है।

राग से भिन्न होकर शुद्ध आत्मा का ज्ञान करना, यह सम्यग्दर्शन है। पूजा, भक्ति, यात्रा आदि तो अनंत बार कीं, लेकिन आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना भव का अंत नहीं आया। भव के अभाव करने के मौसम का यह समय है। नियमसार में दिव्यध्वनि के श्रवण को संपूर्ण जनता के सौभाग्य का कारण कहा है न ? ऐसी परम अध्यात्म की गंभीर बातें, ये तो हीरा-माणिक के हार हैं, इनका क्या मूल्य हो सकता है, ये तो अमूल्य हैं।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ : प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी सोनगढ़ में वर्षाकालीन शिक्षण-शिविर ३१ जुलाई से १९ अबस्त तक अनेक उपलब्धियों के साथ सानंद संपन्न हुआ। इस शिक्षण-शिविर में भारतवर्ष के मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, कर्नाटक, असम, बंगाल आदि प्रांतों के सहारनपुर, ललितपुर, बड़ौत, दिल्ली, भोपाल, इंदौर, जबलपुर, बम्बई, राजकोट, आगरा, कानपुर, इम्फाल, जयपुर, सीकर, लखनऊ, बंगलौर, कलकत्ता आदि १९२ नगरों से ५९७ मुमुक्षु भाई-बहन आये थे।

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के प्रातः परमात्मप्रकाश और सायं समयसार पर होनेवाले अभूतपूर्व मार्मिक प्रवचनों एवं सायंकालीन तत्त्वचर्चा का लाभ तो सबको मिला ही; विद्वद्वर्ग सर्वश्री रामजीभाई, खेमजीभाई, चिमनभाई, बाबूभाई, डॉ. भारिल्ल एवं ज्ञानचंदजी आदि के द्वारा ली गई कक्षाओं में भी बहुत कुछ सीखने को मिला। कक्षाओं में मोक्षमार्गप्रकाशक, जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १ व २, द्रव्यसंग्रह, छहढाला और जैनसिद्धांत प्रवेशिका आदि ग्रंथों के आधार पर निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, प्रयोजनभूत तत्त्व आदि विषयों का महत्त्वपूर्ण अध्ययन कराया गया।

इस अवसर पर तेरह हजार रुपयों का धार्मिक साहित्य बिका।

जन्मदिवस महोत्सव : सोनगढ़ में शिक्षण-शिविर के ही अवसर पर भादवा बदी २ के दिन सम्माननीय बहनश्री चंपाबेन का जन्मदिन आता है। उनका जन्मदिन तीन दिन तक जिनेन्द्र पूजन, पंच परमेष्ठी मंडल-विधन आदि अनेक कार्यक्रमों के साथ बड़े उत्साह से मनाया गया।

बहिनश्री चंपाबेन शांत-स्वभावी, अनुभवी महिलारत्न हैं, जिन्हें गुरुदेव 'धर्मरत्न' कहा करते हैं। वे और भी अनेक प्रकार भावविभोर होकर उनकी प्रशंसा किया करते हैं। ऐसे बहुत कम भाग्यशाली लोग हैं, जिनकी प्रशंसा स्वयं गुरुदेव करते हैं। उनमें बहिनश्री का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रसंग पर मुमुक्षु बंधुओं से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ को

पचास हजार रुपयों का दान प्राप्त हुआ। एक मुमुक्षु बंधु ने इसी उपलक्ष्य में आत्मधर्म की कीमत आधी कर दी और उसी दिन आत्मधर्म के ८०० से अधिक ग्राहक बने।

उक्त अवसर पर जब बहिनश्री से दो श्ब्द कहने का अनुरोध किया गया तो उन्होंने कहा गुरुदेव की वाणी में सब कुछ आ जाता है, मैं क्या कहूँ ? विशेष आग्रह पर उन्होंने निम्नानुसार उद्‌गार प्रगट किये –

इस चैतन्यतत्त्व को पहिचानना, इसको ही पहिचानने का अभ्यास करना, भेदविज्ञान का अभ्यास करना – यही करने योग्य कार्य है। यह अभ्यास करते-करते आत्मा की रागादि से भिन्नता भासे तो आत्मा का स्वरूप प्राप्त हो। आत्मा चैतन्यतत्त्व है, ज्ञायकस्वरूप है, इसी को पहिचानना है।

जीव को ऐसा भ्रम है कि मैं परद्रव्य का कुछ कर सकता हूँ। पर इसे यह पता नहीं है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। प्रत्येक आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। परपदार्थ में इसका ज्ञान जाता नहीं है, परपदार्थ में से भी कुछ इसमें आता नहीं है। यह बात समझने के लिये देव-शास्त्र-गुरु बाह्य निमित्त होते हैं, परंतु ज्ञान-दर्शन-चारित्र जो कुछ प्रगटता है, वह सब अपने में से ही प्रगटता है। इसी मूलतत्त्व को जानना ही करना है, और तो बाहर का अनंत बार बहुत किया। शुभभाव से बहुत क्रियाएँ कीं, शुभभाव में धर्म माना। पर यह पता नहीं कि धर्म तो आत्मा में होता है।

शुभभाव तो विभाव है, आकुलतारूप है, दुखरूप है; इसमें कोई शांति नहीं है। यद्यपि शुभभाव भी आये बिना रहता नहीं, तथापि उसमें शांति नहीं है। जिसमें सुख हो, शांति हो; ऐसा तत्त्व तो आत्मा ही है। इसलिये चैतन्यतत्त्व को पहिचान कर, उसमें ही स्थिर होने का प्रयास करना ही श्रेष्ठ कार्य है। मनुष्य जीवन में करनेयोग्य, हितरूप, कल्याणरूप उक्त एक ही कार्य है।

बहिनश्री के और भी वचनामृत पृष्ठ ग्यारह पर दिये गये हैं। वहाँ देखिये।

जबलपुर में शिक्षण-शिविर

स्थानीय पिसनहारी मढ़िया क्षेत्र पर श्री सेठ हरिशचंद्रजी सुमेरचंदजी की ओर से शिक्षण-शिविर का आयोजन १२ अगस्त ७६ से २४ अगस्त ७६ तक सानंद संपन्न हुआ। श्री

पंडित अभयकुमारजी प्रातः ५ बजे से ६ बजे तक छहढाला, प्रातः ९ से १० तक निश्चय-व्यवहार की कक्षाएँ लेते थे तथा रात्रि में ९ से १० तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन करते थे। श्री पंडित ज्ञानचंदजी शास्त्री सायं ४ से ५ तक लघु-जैन सिद्धांत प्रवेशिका की कक्षा लेते थे। इनके अतिरिक्त पूजन-भक्ति का कार्यक्रम भी प्रतिदिन चलता था। **-ज्ञानचंद जैन**

जयपुर : जयपुर में भादों का महीना लगते ही प्रत्येक मंदिर में स्वभावतः चहल-पहल बढ़ जाती है। वीतराग-विज्ञानमयी तत्त्वज्ञान के प्रचार व प्रसार की दृष्टि से प्रातः दिगंबर जैन मंदिर तेरापंथियान में डॉ. हुकमचंद भारिल्ल एवं पंडित संतोषजी भाँझरी के नियमसार पर तथा सायं टोडरमल स्मारक भवन में डॉ. भारिल्ल के मोक्षमार्गप्रकाशक पर एवं दिगंबर जैन मंदिर भदीचंदजी दीवान, घी वालों के रास्ते में पंडित संतोषजी के प्रवचन आकर्षण का केन्द्र बन रहे हैं।

कौन-कहाँ ?

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के पास अनेकानेक नगरों से पर्यूषणपर्व में प्रवचनार्थ भेजने के लिये आग्रहपूर्ण आमंत्रण आये, पर विद्वानों के अभाव के कारण सिर्फ ७५ स्थानों को विद्वान भेजे जा सके, जिनमें से कुछ विद्वानों के नाम और स्थान इसप्रकार हैं :-

अहमदाबाद - पंडित खीमजीभाई जेठालाला सेठ, सोनगढ़; **बम्बई** - पंडित लालचंदभाई मोदी, राजकोट; **खुरई** - पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर; **गोहाटी** - पंडित युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा; **सहारनपुर** - डॉ० हुकमचंद भारिल्ल, जयपुर; **कोटा** - पंडित हिम्मतभाई जोबालिया, सोनगढ़; **गुना** - पंडित नेमीचंदजी पाटनी, आगरा; **नागपुर** - पंडित चिमनभाई ताराचंद कामदार, सोनगढ़; **भोपाल** -पंडित धन्नालालजी, ग्वालियर; **जबलपुर** - पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा; **खंडवा** - पंडित रतनचंदजी शास्त्री, विदिशा; **जयपुर** - पंडित जवाहरलालजी, विदिशा; **फिरोजाबाद** - पंडित कन्नूभाई, दाहोद; **विदिशा** - पंडित अभयकुमारजी, जबलपुर; **ललितपुर** - पंडित राजमलजी, भोपाल; **हैदराबाद** - पंडित दीपचंदजी जैन, इंदौर; **इंदौर** - पंडित शिखरचंदजी जैन, बड़ौत; **शिवपुरी** - पंडित कैलाशचंदजी जैन, बुलन्दशहर; **हिम्मतनगर** - पंडित नवलचंदभाई, सोनगढ़; **बंगलौर** -

पंडित जेठालालभाई जैन, हैदराबाद; **अलीगढ़** –पंडित रामकिशोरजी जैन, कोटा; **तलोद** – पंडित नेमीचंदभाई वेणीचंद, रखियाल; **लोहारदा** –पंडित जतीशभाई, सनावद; **जगदलपुर** – पंडित रमेशचंदजी जैन, सोनगढ़; **झाँसी** – पंडित घासीलालजी जैन, गुना; **जवेरा** – पंडित धर्मचंदजी जैन, अशोकनगर; **बण्डाबेलई** – ब्रह्मचारी झमकलालजी जैन, कुरावड़; **मलकापुर** – पंडित मणिलालभाई, मुनई; **केसली** – ब्रह्मचारी बाबूलालजी जैन, बरायठा; **गढ़ा कोटा** – पंडित पन्नालालजी जैन, करेली; **उदयपुर** – पंडित हीरालालजी गंगवाल, इंदौर; **खनियाधाना** – पंडित प्रकाशचंदजी पाण्डया, इंदौर; **सुरेन्द्रनगर** – पंडित सुमनभाई सेठ, बम्बई; **कुशलगढ़** – पंडित उग्रसेनजी बण्डी, उदयपुर; **आरोंन** – पंडित नंदकिशोरजी, विदिशा; **बड़ौदा** – पंडित अमोलकचंदजी, अशोकनगर; **भिण्ड** – पंडित बाबूभाई नाथालाल, फतेपुर; **बारामती** – डॉ० प्रियंकर जैन, हिंगोली; **मैनपुरी** – पंडित शांतिलालजी, मौ; **करेली** – पंडित विजयकुमारजी, बरायठा; **महीदपुर** – पंडित रंगलालजी जैन, कुरावड़; **बारामती** – पंडित नेमीचंदजी सराफ, मलकापुर; **छतरपुर** – पंडित बाबूलालजी जैन, बीना; **मलाड़** – पंडित प्राणलालभाई पुरुषोत्तम दास, दादर; **बूंदी** – पंडित शिखरचंदजी जैन, विदिशा; **दाहोद** – पंडित महेन्द्रकुमारजी, बरायठा; **मुंगावली** – पंडित ताराचंदजी जैन, सागर; **पूना** – पंडित रमेशकुमारजी जैन, ललितपुर; **बेगमगंज** – पंडित धर्मदासजी जैन, बड़ौत; **कलकत्ता** – पंडित सुशीलकुमारजी जैन, राघौगढ़; **सेलू** – पंडित नेमीचंदजी सराफ, मलकापुर; **कोलारस** – पंडित मक्खनलालजी जैन, मौ; **रणासण** – पंडित बजुभाई गिरधरलाल जैन; **कुरावली** – पंडित पदमकुमारजी जैन, अभाना; **बोहद** – पंडित शांतिभाई रेवाशंकर, सोनगढ़।

आवश्यकताएँ

आवश्यकता है एक ऐसे व्यक्ति की जो गुजराती में गुरुदेव के प्रवचनों को टेप पर से शार्टहैण्ड द्वारा लिपिबद्ध कर सके। समुचित पारिश्रमिक दिया जायेगा। गुरुदेव द्वारा प्ररूपित तत्त्व की रुचि एवं परिचय वाले को प्राथमिकता दी जावेगी।

मैनेजर, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आवश्यकता है एक ऐसे विद्वान की जो शास्त्रों के अनुवाद तथा ग्रंथों की प्रेस कापी

आदि तैयार कर सके। प्रकाशन व प्रेस के काम की जानकारी रखनेवाले को प्राथमिकता दी जायेगी। योग्यता व पूर्ण विवरण सहित लिखें। वेतन योग्यतानुसार।

मंत्री, श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
६०२, कृष्णनगर, भावनगर (गुजरात)

आवश्यकता है एक ऐसे कार्यकर्ता की जो स्थान-स्थान पर लगनेवाले शिक्षण-शिविरों, पंच-कल्याणकों आदि उत्सवों में धार्मिक साहित्य का बुक-स्टाल लगा सके, तत्संबंधी हिसाब-किताब रख सके। वेतन योग्यतानुसार। **मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२००४

आवश्यकता है एक ऐसे विद्वान की जो कन्नड़ भाषा में प्राप्त शास्त्रों की शोध-खोज एवं उनका हिन्दी भाषा में अनुवाद, संपादन, प्रकाशन आदि कार्य कर सके। वेतन योग्यतानुसार पर्याप्त दिया जायेगा। **महामंत्री, श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट**
१७३-१७५, मुंबादेवी रोड, बम्बई-४००००२

आशातीत सफलता

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का कार्य तेजी से करने का निश्चय किया गया है। इसकी आर्थिक सुदृढ़ता के लिये जो प्रयत्न विगत माह से किये जा रहे हैं, उनमें **पूज्य गुरुदेव के पुण्य-प्रताप से** आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है। **-सम्पादक**

श्रीमान् सेठ साहू शांतिप्रसादजी द्वारा उद्घाटित इस ट्रस्ट के बम्बई अधिवेशन में पारित प्रस्ताव नं० ४ के अनुसार ट्रस्ट शोध-खोज का महत्त्वपूर्ण कार्य हाथ में ले रहा है। आपके शास्त्र-भंडारों की सूचियाँ यदि छप गई हों तो कृपया तुरंत डाक से भेजें। यदि कोई कीमत देना हो तो लिखें, भेज देंगे। यदि न छपी हों और तैयार करनी हों तो वह भी लिखें। हम उक्त कार्य में आपका सहयोग चाहते हैं। यदि आपको हमारा सहयोग अपेक्षित हो तो अवश्य लिखें।

धन्यकुमार मो० बेलोकर, महामंत्री,
श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट,
१७३-१७५, मुम्बादेवी रोड, बम्बई - ४००००२

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

गुलबर्गा (कर्नाटक) से मुनिराज भव्यसागरजी महाराज लिखते हैं –

आत्मधर्म का ३२वाँ वर्ष का पहला अंक देखकर हृदय में हर्ष जागृत हुआ। पहली बात तो यह है कि आपने इसको अच्छे पेपर पर तथा सुंदर और शुद्ध छपाई कराके चमका दिया। दूसरी बात **स्वामीजी के अनमोल वचन प्रमाणिक, न्यायवंत, सिद्धांत के अनुकूल पढ़कर हर्ष के मारे मन नाचने लगा।**

मेरी हृदय से भावना है कि आप आत्मधर्म की तथा वीतराग-विज्ञान पाठशाला की दिन-दिन उन्नति करने में प्रयत्नशील बने रहें।

महाराज ने एक कविता भी बनाकर भेजी है, जो इसप्रकार है :-

स्वामीजी ने इस भारत में, आत्मधर्म को चमकाया। आत्मधर्म का अंक देखकर, भव्यों का मन हर्षाया॥
इस हेतु से आत्मधर्म को, हर प्राणी ने अपनाया। इसमें चर्चा आत्मधर्म की, स्वामीजी ने दर्शाया॥
स्वामीजी की देन बहुत है, पंडित-जन तैयार किए। सुख में रहते नगर सोनगढ़, जग-विकल्प को छोड़ दिये॥
टोडरमल स्मारक के नायक, हुकमचंदजी हैं डॉक्टर। संपादक हैं आत्मधर्म के, कार्य कर रहे बहु सुंदर॥
बढ़सी इस अब आत्मधर्म का, श्रेष्ठ मिल गये संपादक। क्या तारीफ करूँ मैं इसकी, जैनधर्म के प्रचारक॥
अच्छा पत्र सुशोभित निकले, अर्थ समझ में आयेगा। जग-जन सब ही हर्षित हो रहे, जग में नंबर पायेगा॥
हर प्राणी की इच्छा होगी, आत्मधर्म मंगवाना है। आत्मधर्म की चर्चा सुंदर, मन का भरम मिटाना है॥
बत्तीस बरस लगते ही जयपुर से, अब यह निकल रहा। क्या बतलाऊँ इसकी महिमा, भव्यों का मन पलट रहा॥

ललितपुर (उ०प्र०) से पंडित परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ लिखते हैं :-

आपके द्वारा सुसंपादित आत्मधर्म का जुलाई अंक देखा, मनोहर लगा। आद्योपांत पढ़ भी गया हूँ। सचमुच ही आपने अब इसे पठनीय बनाया है। ३०-३१ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम मैंने गुजराती आत्मधर्म का हिन्दी अनुवाद करना प्रारंभ किया था, कई वर्ष तक करता रहा; किंतु इतना सुरुचिपूर्ण संपादन कभी नहीं हुआ। आपने स्वामीजी का 'इन्टरव्यू' देकर बहुत अच्छा काम किया। आप प्रतिमाह स्वामीजी से इन्टरव्यू लेकर समाज में व्याप्त ऐसी ही भ्रांतियों का सुंदरतापूर्वक निवारण करते रहें। यह बहुत उपयोगी और सर्वप्रिय काम होगा। 'ज्ञान-गोष्ठी' जैसे प्रकरण भी चलते रहना चाहिये। अन्य लेख भी उपयोगी हैं। आपने आत्मधर्म का कायाकल्प कर दिया है, तदर्थ मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये।

गोहाटी (आसाम) से श्री भंवरलालजी जैन लिखते हैं :-

आत्मधर्म का पहला अंक मिला। पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। 'चैतन्य चमत्कार : एक इन्टरव्यू' बहुत अच्छा रहा। ऐसे लेखों से लोगों में फैले एवं फैलाए गये बहुत से गलत प्रचार एवं गलतफहमियाँ दूर होंगी।

शोलापुर (महाराष्ट्र) से पद्मश्री ब्र० सुमतिबाईजी एवं ब्र० विद्युतलालजी शहा लिखती हैं :-

जुलाई ७६ की आत्मधर्म पत्रिका खूब हार्दिक स्वागत तथा अभिनंदन करनेयोग्य है। पढ़कर प्रसन्नता से दिल फूला न समाया। आप जैसे उद्‌भट विद्वान पर संस्कृति एवं धर्म का उज्ज्वल भविष्य निर्भर है। नयी शैली से 'इन्टरव्यू' रोचक व लुभावनेवाला है। सारे पन्ने एक श्वास में मानो पढ़ने के लिये वाचक आतुर हो जाता है।

इम्फाल (मणीपुर) से श्री महाचंदजी जैन लिखते हैं :-

पूज्य स्वामीजी से आपके द्वारा लिया गया 'इन्टरव्यू' अपने आप में एक घोषणा-पत्र है। आशा है सभी मुमुक्षुगण इससे शिक्षा लेंगे। स्वामीजी का यह कहना कि 'हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं' - यह तो उनके चैतन्य चमत्कार का ही फल है। कामना करता हूँ कि एक ऐसा आयोजन हो जिसमें कि उनको इस वर्तमान अवस्था के अनुरूप **'श्रावक शिरोमणि' जैसी पदवी से विभूषित किया जावे। वास्तव में उनको इस पदवी से विभूषित करना तो स्वयं इस पदवी का ही गौरव होगा।**

प्रबंध संपादक की कमल से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-

(१) आत्मधर्म के पूर्व में दो हजार ग्राहक थे, फिर भी इसकी चार हजार प्रतियाँ छपवाई गई थीं। परंतु अब ग्राहकों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है, अत: इस अंक की सात हजार प्रतियाँ छपवाई हैं। जुलाई एवं अगस्त के अंक समाप्त हो जाने के कारण उनका रिप्रिंट हो रहा है। जिन्हें ये अंक प्राप्त न हुए हों, उन्हें रिप्रिंट होने पर भेजेंगे।

ग्राहक निरंतर बढ़ रहे हैं, अत: कार्य अधिक हो जाने के कारण व्यवस्था में कमी होना स्वाभाविक है। हम व्यवस्था बनाये रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी यदि किसी को अंक मिलने में कठिनाई हो तो कृपया धैर्य रखें।

(२) जो भाई नये सदस्य बनते हैं, वे मनिआर्डर भेजते समय अपना पता साफ एवं स्पष्ट अक्षरों में लिखने का कष्ट करें ताकि उन्हें अंक मिलने में कठिनाई न हो।

(३) आपके द्वारा अधूरा, गलत या अस्पष्ट पता लिखा होने के कारण डाकखाने से कई अंक वापिस आ गये हैं। ऐसे भाईयों के शिकायत के कई पत्र भी आये हैं, परंतु उन्होंने अपना पता फिर भी स्पष्ट नहीं लिखा है। अंक उनको और भेजेंगे - वे भी वापिस लौट कर आ जावेंगे। अत: शिकायती-पत्र ग्राहक-संख्या व पूरे स्पष्ट पते के साथ लिखें, तब ही हम कुछ कर सकेंगे।

(४) ड्राफ्ट भेजने वाले बंधु Atmadharma के नाम से ड्राफ्ट बनवाएँ।

हमारी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ –

- महावीर वाणी के गूढ़ रहस्य को प्रगट करनेवाले पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का 'आत्मधर्म' पत्र द्वारा जन-जन में सम्प्रेषण।
- सोनगढ़ में संपन्न शिविरों द्वारा तैयार किये गये सदाचारी एवं तत्त्वप्रेमी आध्यात्मिक विद्वान।
- स्थान-स्थान पर संपन्न शिविरों द्वारा जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार व प्रसार।
- प्रौढ़ों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में मुमुक्षु मंडलों द्वारा शास्त्र सभाओं का संचालन।
- बालकों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का संचालन।
- सस्ता सत्साहित्य प्रकाशन एवं वितरण।
- तत्त्व-प्रचार व प्रसार को नियमित करने के लिए वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड का संचालन।
- नवीन वैज्ञानिक धार्मिक पाठ्यक्रम।
- प्रशिक्षण-शिविरों द्वारा प्रशिक्षित धार्मिक अध्यापक।
- तीर्थों की सुरक्षा हेतु सर्व प्रकार का सहयोग।

- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर – ३०२००४
- श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे
समयसार	१२-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००
छहढाला (सचित्र)	१-५०
द्रव्यसंग्रह	१-२०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
बालपोथी भाग १	०-२५
बालपोथी भाग २	०-४०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

	रु० पैसे
परमात्म पूजा संग्रह	२-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ?	१-००
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
अपने को पहचानिए	०-५०
पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**